आयतित गेहूं और खाद्यान्न सुरक्षा

सुनील

भारत सरकार द्वारा महंगी दरों पर विदेशों से गेहूं आयात का मामला काफी विवादास्पद हो गया है। नवीनतम निविदाओं पर फैसला 3 सितंबर 2007 को हुआ, जिसमें 16 रुपए किलो की दर से लगभग 8 लाख टन गेहूं आयात के आदेश दिए गए थे। सरकार के इस फैसले की काफी आलोचना हो रही है। बीते सीज़न में सरकार ने देश के किसानों से गेहूं खरीदी के लिए 8.50 रुपए प्रति किलो की दर तय की थी। सरकार देश के किसानों को कुछ बेहतर दाम देती, तो इस महंगे आयात की नौबत न आती। इसके चलते सरकार के खाद्य प्रबंधन और बाज़ार की समझ पर गहरे सवाल खड़े हो गए हैं।

सरकार का कहना है कि पिछली फसल के समय पर्याप्त गेहूं सरकारी खरीदी में नहीं आया और सरकारी अनाज भंडार खाली हैं। इसलिए सरकार को आयात करना पड़ रहा है। इस बीच अंतर्राष्ट्रीय कीमतें बहुत बढ़ गई हैं। जब सरकार ने पिछली फसल के लिए 750 रुपए प्रति क्विंटल समर्थन मूल्य और 100 रुपए बोनस घोषित किया था, तब अंतर्राष्ट्रीय कीमतें इतनी नहीं थीं। केंद्रीय खाद्य एवं कृषि मंत्री ने कहा है कि अनाज का सरकारी भंडार भरने तथा देश के अंदर अनाज की कीमतों को नियंत्रित करने के लिए सरकार को महंगा गेहूं आयात करने का फैसला लेना पड़ा है। सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत गरीबों को राशन में अनाज देने, अंत्योदय अन्न योजना, पाठशालाओं की मध्यान्ह भोजन योजना, काम के बदले अनाज योजना आदि के लिए तथा न्यूनतम सुरक्षित भंडार बनाए रखने के लिए अनाज की ज़रूरत है। उनके मुताबिक देश की खाद्य सुरक्षा के लिए ही सरकार ने यह कदम उठाया है।

किंतु यदि वर्तमान परिस्थितियों की मज़बूरी को मान भी लिया जाए, तो भी यह सवाल तो उठता ही है कि ये स्थितियां पैदा कैसे हुईं? इसकी समीक्षा की ज़रूरत है।

अभी कुछ वर्ष पहले ही स्थिति उल्टी थी। वर्ष 2000-01 में देश में गेहूं का उत्पादन 763.7 लाख टन हुआ था। सरकारी गोदाम अनाज से भरे थे और उनमें अनाज रखने की जगह नहीं थी। गोदामों को खाली करने के लिए सरकार बड़ी मात्रा में गेहूं का निर्यात कर रही थी। यह निर्यात भी सरकारी खरीद के समर्थन मूल्य से कम कीमतों पर घाटा उठाकर हो रहा था। वर्ष 2000-01 से 2005-06 के बीच सरकार ने कुल 140 लाख टन गेहूं का निर्यात किया। हम निर्यात से आयात, प्रचुरता से अभाव की अतिरेक परिस्थितियों के बीच पेंडुलम की तरह झूल रहे हैं।

दरअसल, अनाज का यह आधिक्य कृत्रिम रूप से पैदा किया गया था। वर्ष 2000-01 में राशन दुकानों में बांटे जाने वाले अनाज का मूल्य एकाएक बढ़ा दिया गया। अनाज के दाम गरीबी रेखा से

नीचे के परिवारों के लिए 66 प्रतिशत तक और गरीबी रेखा से ऊपर के परिवारों के लिए 25 प्रतिशत तक बढ़ा दिए गए। गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की सूची को काटने-छांटने का भी काम चला। विश्व बैंक व सरकार ने इसे 'लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली' (टारगेटेड पीडीएस) का नाम दिया। नतीजा यह हुआ कि राज्य सरकारों द्वारा भारतीय खाद्य निगम के गोदामों से सार्वजनिक वितरण प्रणाली हेतु उठाए जाने वाले अनाज की मात्रा काफी कम हो गई। यही अनाज की प्रचुरता का रहस्य था। सरकार ने देश के गरीबों को सस्ता अनाज देने के बजाय सस्ता निर्यात करना पसंद किया। इस अनाज का उपयोग देश में बड़े स्तर पर 'काम के बदले अनाज' योजना के विस्तार के लिए किया जा सकता था। इससे देश में श्रम प्रधान अधोसंरचनाओं का बड़े पैमाने पर निर्माण हो सकता था और बेरोज़गारी, कंगाली व भुखमरी कम होती।

देश में अन्न की प्रचुरता का यह भ्रम इस बात से टूटता है कि इस अवधि में देश में प्रति व्यक्ति अनाज उत्पादन कम हो रहा था। प्रति व्यक्ति सालाना अनाज उत्पादन 1991-95 की पांच वर्षीय अवधि में 192 कि.ग्रा. के अधिकतम स्तर पर पहुंच गया था। इसके बाद 1995-2000 में यह घटकर 191 कि.ग्रा. और 2000-05 में 177 कि.ग्रा. रह गया। 2000-05 की पांच वर्ष की अवधि ही सरकारी गोदामों में अत्यधिक अनाज भरे रहने की अवधि है। इस अवधि में देश के कई हिस्सों से भुखमरी व कुपोषण की खबरें भी लगातार आती रहीं। भूखे पेट और भरे गोदामों का सह-अस्तित्व एक विडंबना ही कही जा सकती है।

मगर विशेषज्ञों और योजनाकारों ने मान लिया है कि देश में गेहूं-चावल का उत्पादन बहुत ज़्यादा हो गया है और इसे कम करने की ज़रूरत है। भारत सरकार ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रो. अभिजित सेन की अध्यक्षता में 'दीर्घकालीन अनाज नीति' बनाने के लिए एक समिति गठित की। इस समिति ने कहा कि भारत में फसलों का ढांचा गेहूं व चावल के पक्ष में झुक गया है। इसे संतुलित करने और इसके विविधीकरण की ज़रूरत है। समिति ने गेहूं व धान का समर्थन मूल्य स्थिर रखने की भी सिफारिश की।

इस समिति का यह निष्कर्ष ही भारत की खाद्य सुरक्षा के लिए संकट का स्रोत बना। यह सही है कि हरित क्रांति के दौरान निश्चय ही गेहूं, चावल व अन्य कुछ फसलों का रकबा व उत्पादन तेज़ी से बढ़ा है। लेकिन दालों व मोटे अनाजों की घोर उपेक्षा हुई है। प्रति व्यक्ति दाल उत्पादन तो तेज़ी से कम हुआ है। यदि सरकार गेहूं, चावल का उत्पादन कम न करते हुए, दालों का उत्पादन बढ़ाने की योजना बनाती, तो बेहतर होता। लेकिन विविधीकरण के नाम पर सरकार का सबसे ज़्यादा ज़ोर फलों, सब्ज़ियों, फूलों, तिलहनों व अन्य निर्यात योग्य फसलों की खेती पर है। इस खेती का लक्ष्य मुख्य रूप से अमीर देशों और भारत के अमीरों के उपभोग की सामग्री तैयार करना है और इसमें देशी-विदेशी कंपनियों के मार्जिन व उनकी भूमिका काफी है।

यह सही है कि हरित क्रांति के दौरान निश्चय ही गेहूं, चावल व अन्य कुछ फसलों का रकबा व उत्पादन तेज़ी से बढ़ा है। लेकिन दालों व मोटे अनाजों की घोर उपेक्षा हुई है। प्रति व्यक्ति दाल उत्पादन तो तेज़ी से कम हुआ है। यदि सरकार गेहूं, चावल का उत्पादन कम न करते हुए, दालों का उत्पादन बढ़ाने की योजना बनाती, तो बेहतर होता।

नतीजा यह हुआ कि 2001 से 2006 के बीच गेहूं के समर्थन मूल्य में वृद्धि लगभग रोक दी गई। इस अवधि में समर्थन मूल्य में मात्र 1.2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि थी। यह मुद्रा स्फीति की सामान्य दर से भी काफी कम थी। इस बीच खेती की लागत तेज़ी से बढ़ रही थी, क्योंकि खाद, बीज सिंचाई, डीज़ल, बिजली आदि की दरें लगातार बढ़ रही थीं। नतीजतन गेहूं का उत्पादन भी कम हो गया। वर्ष 2000-01 के रिकॉर्ड उत्पादन के बाद अगले वर्ष ही गेहूं उत्पादन 94 लाख टन कम हो गया। इसी वर्ष (2007) बाजार में गेहूं की ऊंची कीमतों के कारण गेहूं उत्पादन 748 लाख टन पर पहुंचा है, लेकिन

2000-01 के स्तर को अभी भी नहीं छू पाया है। खाद्य सुरक्षा की किसी भी योजना में देश में खाद्यान का उत्पादन बढ़ाना एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। लेकिन इस मामले में भारत सरकार उल्टी दिशा में चल रही है।

समर्थन मूल्य कम रखने के कारण गेहूं की सरकारी खरीदी भी लगातार कम होती गई। वर्ष 2001-02 में सरकारी खरीदी केंद्रों पर 206.3 लाख टन गेहूं आया था जो 2006-07 में 94.3 लाख टन रह गया। अप्रैल 2006 में भारत सरकार के गोदामों में गेहूं का भंडार निर्धारित न्यूनतम सुरक्षित मात्रा से भी आधा रह गया था। इसी वर्ष से भारत सरकार को बड़ी मात्रा में गेहूं आयात शुरू करना पड़ा। जो भारत कल तक अनाज के मामले में स्वावलंबी था, अब वह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा गेहूं आयातक देश बन गया है। गेहूं आयात करने के लिए हमें गुणवत्ता और पौध सुरक्षा के मानदण्डों को भी शिथिल करना पड़ा है। आयातित लाल गेहूं खाने लायक नहीं है, ऐसी शिकायतें आ रही हैं।

दरअसल, सरकार का ताज़ा सोच ही खाद्यान्न स्वावलंबन के खिलाफ है। इसका मानना है कि ज़्यादा समर्थन मूल्य देने व ज़्यादा अनाज खरीदी करके भंडारण करने से सरकार के ऊपर वित्तीय बोझ काफी आता है। इससे बाज़ार में भी सरकार का दखल काफी होता है, जिससे बाज़ार की शक्तियों को खुलकर काम करने का मौका नहीं मिलता और निजी एवं विदेशी पूंजी आकर्षित नहीं होती। सोच यह भी है कि अनाज पैदा करने की बजाए फूलों-फलों-सब्ज़ियों और निर्यात हेतु फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिए।

उदारीकरण एवं निजीकरण की नीति के तहत सरकार भारतीय खाद्य निगम व समर्थन मूल्य पर खरीदी की व्यवस्था को ही बंद करना चाहती है। इसके लिए विभिन्न विकल्पों पर विचार किया जा रहा है। जैसे मात्र सार्वजनिक वितरण प्रणाली की ज़रूरत लायक अनाज की आपूर्ति का ठेका निजी कंपनियों को दे दिया जाए। एक प्रस्ताव है कि राशन दुकानें बंद करके गरीब परिवारों को या तो नगद सहायता दी जाए या खाद्य कूपन दे दिए जाएं। इन कूपनों से वे किसी भी दुकान से अनाज ले सकते हैं और वह दुकान मालिक कूपन इकट्ठे करके सरकार से राशि ले सकता है। इसी प्रकार, समर्थन मूल्य पर किसानों से खरीदी करने के स्थान पर सरकार एक बीमा योजना शुरू कर सकती है, जिसमें यदि किसान को बाज़ार में कम दाम मिलते हैं, तो उसके नुकसान की भरपाई बीमा कंपनी कर देगी। तीन वर्ष पहले देश के चुनिंदा गेहूं उत्पादक ज़िलों में ऐसी एक बीमा योजना का प्रयोग किया भी गया था, लेकिन किसानों के विरोध के कारण अगले वर्ष उसको बंद कर देना पड़ा।

सरकार के इस सोच की पुष्टि 20 सितंबर, 2007 को दिल्ली में कृषि विपणन पर फिक्की के सम्मेलन में केंद्रीय कृषि मंत्री के बयान से होती है। श्री शरद पवार ने किसानों से अनाज की खरीद पर न्यूनतम समर्थन मूल्य तय किए जाने पर आपत्ति दर्ज की और कहा कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए सरकार को खुले बाज़ार से अनाज खरीदना चाहिए। यह सही है कि समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीदी एवं फिर राशन दुकानों पर अनाज वितरण की वर्तमान व्यवस्था में कई कमियां, फिज़ूलखर्ची और अकुशलताएं हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में रिसाव, कालाबाज़ारी व भ्रष्टाचार भी जगज़ाहिर है। लेकिन ज़रूरत इन्हें सुधारने, ज़्यादा पारदर्शी बनाने, जन भागीदारी व जन नियंत्रण बढ़ाने और विकेंद्रीकरण की है। उन्हें बंद करने से तो नए संकट खड़े हो जाएंगे। उदाहरण के लिए, खाद्य कूपनों का प्रयोग दुनिया में कई जगह हो चुका है। इसमें भी कई समस्याएं हैं और भ्रष्टाचार इसमें भी है।

इसी प्रकार, जब भारतीय किसानों पर वैश्वीकरण का हमला बढ़ता जा रहा है, समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीदी उनका आखिरी सहारा है। खाद्यान्नों का खुला अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार होने से आज उन्हें सरकारी संरक्षण व मदद की ज़रूरत पहले से ज़्यादा है। यदि समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीदी खत्म कर दी गई तो भारतीय किसान व खेती पूरी तरह बरबाद हो जाएंगे।

सरकार की नीति घरेलू कृषि बाज़ार में भी देशी-विदेशी कंपनियों को बढ़ावा देने की रही है। पिछले कुछ वर्षों से कई कंपनियां गल्ला बाज़ार में आक्रामक रूप से सक्रिय हो गई हैं। सरकारी समर्थन मूल्य कम होने का फायदा उठाकर वे थोड़ी ज़्यादा कीमतों पर किसानों से अनाज खरीदकर अपने गोदामों में भर लेती हैं और बाद में महंगा बेचकर मुनाफा कमाती हैं। इसके अलावा, इन बड़ी कंपनियों की जमाखोरी व सट्टेबाज़ी से देश के अंदर गेहूं की कीमतें लगातार ऊंची बनी हुई हैं। उदारीकरण की नई व्यवस्था में भारत सरकार द्वारा कृषि वस्तुओं के वायदा सौदों की अनुमति दे दी गई है और वायदा बाज़ार शुरू किए गए हैं, उससे भी सटोरियों की बन आई है।

वर्ष 1991 में, नई आर्थिक नीति की शुरुआत में, विश्व बैंक ने भारत सम्बंधी एक दस्तावेज में कहा था,

"गेहूं और चावल के सुरक्षित व कार्यशील भंडारों का ऊंचा स्तर (वर्तमान में 190 लाख टन) खर्चीला तथा गैर ज़रूरी है। कम उत्पादन के वर्षों में विश्व बाज़ार में प्रवेश करके आपूर्ति बढ़ाकर तथा खरीदी के लिए विदेशी मुद्रा की व्यवस्था रखकर भारत कम सुरक्षित भंडारों से भी काम चला सकता है।"

ज़ाहिर है कि भारत सरकार विश्व बैंक की सुझाई इसी राह पर चल रही है। भारत का विदेशी मुद्रा भंडार लगातार बढ़ता जा रहा है, और 230 अरब डॉलर तक पहुंच गया है। सरकार ने शायद सोचा था कि मुक्त व्यापार की नई व्यवस्था में यह विदेशी मुद्रा भंडार ही खाद्य सुरक्षा का काम करेगा। लेकिन गेहूं आयात का ताज़ा अनुभव यही बताता है कि विदेशी मुद्रा भंडार और आयात से भारत की खाद्य सुरक्षा की यह व्यवस्था काफी महंगी, अकुशल, अनिश्चित और अविश्वसनीय है। भारत का अन्न उत्पादन बढ़ाना, खोए हुए अन्न स्वावलंबन को हासिल करना, लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाना, कमज़ोर क्रय शक्ति वाले परिवारों को राशन में सस्ता अनाज उपलब्ध कराना, घरेलू खाद्यान्न बाज़ार एवं कीमतों को नियंत्रित करना एवं बड़ी कंपनियों को मनमानी छूट न देना ही भारत की खाद्य सुरक्षा का एकमात्र कारगर तरीका है। इसी से सुनिश्चित किया जा सकता है कि भारत की 100 करोड़ से अधिक जनता को पेट भरने के लिए अनाज के लिए तरसना न पड़े। ***(स्रोत फीचर्स)***

वर्ग पहेली 37 का हल

ए	क	दो	ती	न		आ		प्र
	च		मा		आ	यु	वें	द
च	ना		र	फ्ता	र			र्श
	र		दा			वा	म	न
		पा	री		स	म		
आ	स	न			मी		ब	
स			पा	ल	क		र	थ
व	न्य	जी	व		र		सा	
न		भ		प्रा	ण	घा	त	क

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक 150 रुपए द्वैवार्षिक 275 रुपए त्रैवार्षिक 400 रुपए